THE TIMES OF INDIA

Date: 05-02-26

Farmers & FTAs

India needs more trade deals to spur growth, but its hands are tied by world's largest farmer population

TOI Editorials

Rome wasn't built in a day, but 22-year-old Alcaraz beating 38-year-old Djokovic at Australian Open is yet another reminder that coming of age needn't take forever. Nasa took just 11 years to touch down on Moon. Japan was running rings around US car industry, in America, after 20 years. India went from being milkdeficient to the largest producer 28 years after launch of Op Flood. Yet, almost 80 years after Independence, our millennia-old agriculture and dairy are considered incapable of standing up to foreign competition, therefore, in need of tariff protection.

This is clear from trade agreements signed over the past 12 months. Whether it is CETA with UK, or the FTA with New Zealand, and now the EU and US deals, agriculture and dairy always become sticking points for India. It's no secret that ink on the deal with Trump would have dried early last year, but for India's political compulsions based on its vast farmer population. Now, no country is immune to such pressures. France, even though it has fewer than 4L farming households, as against up to 15cr in India, has seen strong resistance to EU's recent trade deal with S America's Mercosur block. And that's understandable because food security is part of national security. Jawan and kisan together win wars.

But India's resistance to agri imports – commerce minister has said "India is never going to open up dairy" – is not about Jai Kisan . Rather, it's an acknowledgement of the precarity of our farmers. Farming accounts for only 1.2% of US employment. It makes up 1% of US GDP, and 1.6% in EU. But it's worth 16.3% of India's far smaller GDP. Simply too many Indians are eking out a living on small, unviable farms. Why? For want of better and dependable employment. And because agriculture as a sector is growing far slower than the Indian economy – 4.4% vs 7.4% – their prospects aren't exactly bright.

So, India's protectionist stand is justified, but for how long? That's the Rome question. How many more decades will it take us to reduce agricultural population to, say, 20%, or 10%? Because keeping 45% of population in an unproductive sector is like parking money in a low-interest savings account. It's a waste of India's demographic dividend. India should show greater urgency to absorb farmers in the industrial workforce. So that 10 or 15 years from now, every FTA does not seem like a threat to half the population's livelihood.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 05-02-26

The Name's Bond, Municipal Bond

ET Editorial

Indian cities, as Economic Survey notes, are 'aspirational but exhausting'. A key reason is the poor state of infrastructure, itself rooted in weak municipal finances. To address this, the budget has proposed a ₹100 cr incentive for any municipal bond issuance above ₹1,000 cr by a city corporation, while continuing AMRUT (Atal Mission for Rejuvenation and Urban Transformation) support for smaller issuances up to ₹200 cr. This incentive encourages large cities to tap bond markets rather than rely solely on grants or bank borrowing. By lowering perceived risk and improving viability, the aim is to deepen the municipal bond market and strengthen transparency and fiscal discipline in urban financing.

While not new to India — the first bond was issued by Bengaluru in 1997 — the market remained dormant for years. Momentum has picked up of late. As of June 2025, 23 municipal bond issuances under Sebi's framework have mobilised almost ₹3,359 cr. Globally, municipal bonds — from East Asian transit systems to US water and sewer networks — have enabled resilient urban transitions. India's now shaping its own model. Nashik Clean Godavari bonds highlight how civic pride and environmental goals can align with market participation. Green and ESG-linked municipal bonds are emerging as the next frontier, with cities like Indore, Ghaziabad and Pimpri-Chinchwad seeing strong, often oversubscribed, demand under Sebi's green debt framework.

Basic challenges remain. Many ULBs are unrated or below investment grade, revenue autonomy is limited, and financial reporting is uneven. Addressing these gaps through better accounting standards, tailored credit ratings and possible tax incentives will be crucial to creating financially self-reliant, future-ready cities.

दैनिक भास्कर

Date: 05-02-26

कानून ऐसे हों, जो धरातल पर अमल में लाए जा सकें

संपादकीय

शिक्षा और खाद्य सुरक्षा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अलग-अलग समय और रास्तों से मौलिक अधिकार तो बने लेकिन क्या इनका वास्तविक लाभ आम नागरिकों को मिला? शिक्षा महंगी और निजी हाथों में जाती रही जबकि खाद्य सुरक्षा कुछ किलो मुफ्त अनाज तक सीमित हो गई। वर्तमान सरकार मनरेगा के बाद इन दोनों कानूनों में बदलाव लाकर इन्हें समयबद्ध तरीके से अमल में लाना चाहती है। हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि समानता स्कूलों से शुरू होती है।

कोर्ट के एक फैसले के बाद ही 2002 में संविधान संशोधन करके शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने के लिए अनुच्छेद 21 (अ) जोड़ा गया और 2009 में शिक्षा का अधिकार कानून आया खाद्य सुरक्षा को भी कोर्ट ने जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग माना और यूपीए सरकार ने 2013 में इसे कानूनी जामा पहनाया। लेकिन क्या वास्तव में एक गरीब का बच्चा आज वही शिक्षा पा रहा है, जो किसी उच्च वर्ग के बच्चे को मिल रही है? क्या यह सच नहीं कि आज भी कुपोषण देश के लिए बड़ी समस्या है और केवल मुफ्त अनाज इसका हल नहीं है? सरकार का मानना है कि इन कानूनों में बदलाव करके इन्हें सबके लिए सुलभ कराने का समयबद्ध खाका होना चाहिए। दूसरा, क्रियान्वयन की रियल टाइम मॉनिटरिंग डिजिटल प्रक्रिया से हो। और तीसरा, योजना भले सबके लिए हो लेकिन उससे लाभान्वित होने वाले लोगों को प्राथमिकता से चिह्नित किया जाए। कानून ऐसे होने चाहिए, जिन्हें अमल में लाना राज्यसत्ता के लिए बाध्यकारी हो ।

Date: 05-02-26

काम करने का प्रश्न मनुष्य के अस्तित्व की गरिमा से जुड़ा है

पीटर कर्षलैगर, (ल्यूसर्न यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर और डायरेक्टर)

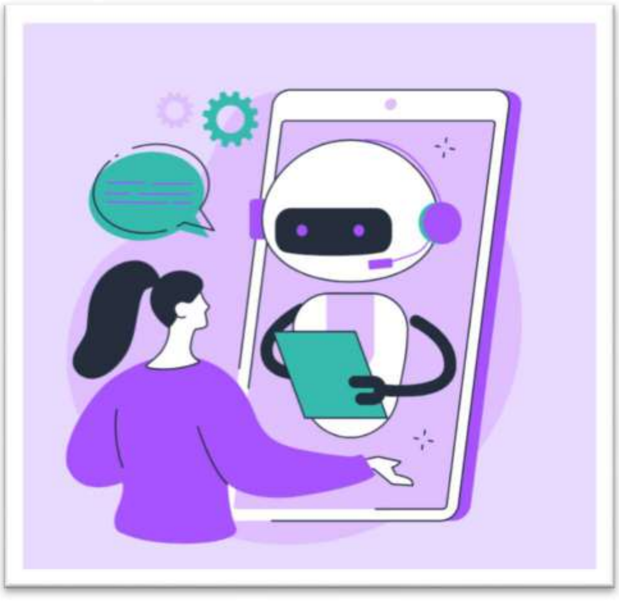

जिसे हम आमतौर पर एआई कहते हैं, वह वास्तव में डेटा-बेस्ड सिस्टम्स (डीएस) का एक सेट है। ये तकनीकें इंसानी जीवन के हर पहलू को बदल रही हैं। नए बिजनेस मॉडल बढ़ा रही हैं और समूची अर्थव्यवस्थाओं को नए सिरे से गढ़ रही हैं। समय के साथ ये नई नौकरियां पैदा करने, उत्पादकता बढ़ाने और कॉग्निटिव क्षमताएं बढ़ाने का वादा करती हैं।

लेकिन इन फायदों के साथ ही डिजिटल क्रांति और डीएस का यह प्रसार श्रम बाजार, शिक्षा और प्रोफेशनल ट्रेनिंग को बाधित भी कर रहा है। परिणाम साफ दिखने लगे हैं- एल्गोरिदम-आधारित प्लेटफॉर्म्स द्वारा तैयार जोखिमपूर्ण कार्य-स्थितियां, घटती मजदूरी और अर्थव्यवस्था की जरूरतों व कामगारों के प्रशिक्षण के बीच बढ़ता असंतुलन।

इस सब से यह बुनियादी सवाल खड़ा होता है कि क्या एआई का बढ़ता इस्तेमाल वेतन या मजदूरी वाले पेशेवर काम को अप्रासंगिक कर देगा? हमें अकसर बताया जाता है कि तकनीकी छलांग ने हर बार बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की आशंकाएं पैदा कीं और हर बार ये गलत ही साबित हुईं। लेकिन ये ऐतिहासिक पैटर्न अब शायद काम न करे।

मोटे तौर पर अतीत की तकनीकें मानव श्रम को अधिक कुशल या शारीरिक रूप से कम मेहनत वाला बनाने के लिए विकसित हुई थीं। इसके उलट, एआई इंसान को वैल्यू-चेन से हटा देने पर आमादा है। पिछली तकनीकी क्रांतियों के

विपरीत एआई सिस्टम्स महज सामान्य या कम-कौशल वाले कामों तक सीमित नहीं हैं। ये उन क्षेत्रों में भी बढ़ रहे हैं, जो कभी मानवीय विशिष्टता में शामिल थे, जैसे चिकित्सा और सर्जरी, कानूनी विश्लेषण या रचनात्मक सृजन।

आज एआई के विस्तार और गति से उस भरोसे को चुनौती मिल रही है कि तकनीकी इनोवेशंस हमेशा जितनी नौकरियां खत्म करते हैं, उससे अधिक पैदा करते हैं। वस्तुत: ऐसा कोई ऐतिहासिक नियम है ही नहीं, जो यह गारंटी देता हो कि तकनीकी बदलाव अनिवार्य रूप से इंसानों के लिए अधिक पेड-वर्क पैदा करेगा। इसके विपरीत, सामने आ रहे प्रमाण बताते हैं कि जिस गति से नई नौकरियां पैदा हो रही हैं, उससे कहीं ज्यादा तेजी से एआई पूरे के पूरे पेशों को ही समाप्त कर रहा है।

यकीन मानिए कि काम का कम समय और अधिक फ्री-टाइम जरूरी तौर पर बुरा नहीं। अत्यधिक श्रम से मुक्त कोई समाज अधिक रचनात्मक हो सकता है। खतरा काम खत्म होने से नहीं, बल्कि इसके साथ समाप्त होने वाली चीजों से है। जैसे, वेतन, जनहित में काम आने वाला टैक्स-आधार और रोजगार से मिलने वाली पहचान, प्रयोजन-भावना, अस्मिता और साथ काम करने वाले लोगों के बीच का सौहार्द।

जब आर्थिक मूल्य पैदा करने के लिए कम से कम लोगों की जरूरत होगी तो नीति-निर्माताओं को श्रम बाजार पर एआई का असर स्वीकारना ही होगा। ऐसे में दांव पर देशों की वो प्रतिबद्धता है, जिसमें अधिक से अधिक रोजगार पैदा करने पर जोर होता है।

अस्तित्व खो चुके किसी जॉब-मार्केट के प्रति लोगों को कुशल होने के लिए कहना इन बदलावों के लिए ऐसे व्यक्तियों को जिम्मेदार ठहराना होगा, जिनका उन पर कोई नियंत्रण ही नहीं है। जबकि जरूरत ऐसे पॉलिसी फ्रेमवर्क की है, जो इस बदलाव की व्यापकता के अनुरूप हो।

ऐसे में हमें 'सोसाइटी, आंत्रप्रेन्योरशिप और रिसर्च-टाइम' (एसईआरटी) मॉडल को अपनाना होगा, जो आय को काम से पृथक करता है, लेकिन बिना शर्त नहीं। इसका उद्देश्य गरिमापूर्ण जीवन और मानवाधिकारों के साथ मानवीय अस्तित्व की आवश्यकताएं पूरा करना है। लेकिन अगर दुनिया ने बिना किसी सामूहिक प्रतिक्रिया के एआई को मानव श्रम को विस्थापित करने दिया तो यह असमानता और अन्याय बढ़ाएगा। इससे राजनीतिक अस्थिरता पैदा होगी और सामाजिक ताना-बाना कमजोर होगा।

एआई के विस्तार और गति से इस भरोसे को चुनौती मिल रही है कि तकनीकी इनोवेशंस हमेशा जितनी नौकरियां खत्म करते हैं, उससे अधिक पैदा करते हैं। इसके उलट आज एआई पूरे के पूरे पेशों को ही खत्म कर रहा है।

Date: 05-02-26

एक क्लिक पर ही सब मिल जाएगा तो व्यक्तित्व कैसे निखरेगा?

नंदितेश निलय वक्ता, (एथिक्स प्रशिक्षक एवं लेखक)

आपने ध्यान दिया है कि एक तरफ जहां सारी दुनिया पूरी ऊर्जा के साथ स्क्रीन पर आलोकित होती रहती है; वहीं दूसरी तरफ हमारी युवा पीढ़ी पर एक कभी न खत्म होने वाली सुस्ती भी छाई रहती है। बेड शीट झाड़ना, दो कदम चलकर पानी का गिलास उठाना, किताबों को सहेजना, किसी का हालचाल पूछना, अपने कमरे से निकलकर दूसरे कमरे में जाना- ये सब उनके लिए बहुत दुरूह कार्य बन जाते हैं। बिस्तर पर पढ़ना, वहीं पर खाना और साथ-साथ लगातार फोन देखते रहना ही उन्हें सही और उपयोगी नजर आने लगता है। स्क्रीन टाइम के अलावा बाकी सारे कार्य अनिच्छा से भर जाते हैं।

इस पीढ़ी में जितनी ऊर्जा अनवरत फोन देखने और एक क्लिक पर सामान मंगाने के लिए है, वैसी घर से बाहर निकलकर टहलने या लाइब्रेरी तक पहुंचने के लिए क्यों नहीं नजर आती है? "टेक-ब्रोज़' कहलाने वाली यह पीढ़ी हजार बातों में अपने माता-पिता से सहमत नहीं होती। तुरंत प्रतिक्रिया देना इनके लिए आम है। अपनी सोच को लेकर ये बहुत पजेसिव होते हैं और उन लोगों को बिलकुल पसंद नहीं करते, जो उनके कम्फर्ट जोन को तोड़ना या उन्हें कुछ सिखाना या समझाना चाहते हैं।

सिलिकॉन वैली में मशहूर 'तेजी से आगे बढ़ो' का मंत्र इस नई पीढ़ी को अकसर नैतिक गलतियों और अनचाहे नतीजों की ओर ले जाता है। इस पीढ़ी को इनोवेशन और विज़न के लिए सराहा जाता है, लेकिन जोखिम लेने को लेकर उनका लापरवाह रवैया समाज को नुकसान भी पहुंचा सकता है। यह डेटा-प्राइवेसी के उल्लंघन और एल्गोरिदम में भेदभाव के मामलों में देखा भी गया है।

अगर हम इस पीढ़ी को उनके माता-पिता की नजरों से देखें तो वे उन्हें लगातार गैजेट्स से दूर रखने की कोशिश करते पाए जाते हैं। उनके लिए अपने बच्चों का सर्वांगीण विकास मायने रखता है, जबकि "टेक-ब्रोज़' के लिए, तकनीक, दक्षता और कम्फर्ट जोन ही लक्ष्य होता है। और शायद यही कारण है कि जिस बात पर वे सबसे ज्यादा असहमत होते हैं, या जिस पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया जाहिर करते हैं; वह है मेहनत का महत्व।

उनके माता-पिता का मानना होता है कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए सभी को अपने कम्फर्ट जोन से बाहर निकलना चाहिए। लेकिन "टेक-ब्रोज़' के लिए तो पूरी दुनिया एक क्लिक पर मौजूद है, फिर मेहनत क्या करना! श्रम तो निम्न वर्ग के हिस्से गया है।

वो भला फोन छोड़ मेहनत का दामन क्यों थामें! तकनीक की दुनिया ने उन्हें एक ऐसा सपनीला संसार दिया है, जहां उनकी हर 'असुविधा' को खत्म कर दिया गया है। सबकुछ इंस्टैंट डिलीवर हो जाता है। अब तो सोचने का काम भी बुद्धिमान चैटबॉट्स को आउटसोर्स कर दिया गया है।

लेकिन इसी ने 'फ्रिक्शन-मैक्सिंग' (Friction- maxxing) के नए विचार को भी जन्म दिया है, जो हमारी दिनचर्या में 'असुविधा' की वापसी की वकालत करता है। यह शरीर को चलाने और प्रयत्नशीलता के महत्व के तर्क को सामने रखता है।

ये कहता है कि घर बैठकर खाना मंगवाने के बजाय घर से बाहर निकलना, ट्रैफिक का सामना करना और खाना ऑर्डर करने के बाद उसकी प्रतीक्षा करना हम में धैर्य और ऐसे माहौल में रहने की क्षमता को विकसित करता है, जिन पर हमारा नियंत्रण नहीं। क्योंकि खुद को मुश्किल स्थितियों में डालना हमारे व्यक्तित्व को निखारता है।

इससे हासिल होने वाली मानसिक मजबूती और आत्मविश्वास हमें बात-बात पर निराश होने से बचाता है और हमें बताता है कि जीवन कोई इंस्टा या मेटा का प्लेटफार्म नहीं, एक सघन वास्तविकता है। आखिर यह "फ्रिक्शन' ही है, जो फिजिक्स की भाषा में व्यक्ति को गिरने से बचाता है और हर घड़ी सतर्क भी रखता है!

दैनिक जागरण

Date: 05-02-26

इस्लामिक जगत में बदलते समीकरण

आनंद कुमार, (लेखक मनोहर पर्रिकर रक्षा अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान में एसोसिएट फेलो हैं)

पश्चिम और दक्षिण एशिया की सुरक्षा संरचना इस समय एक गहरे, लेकिन अपेक्षाकृत शांत परिवर्तन के दौर से गुजर रही है। इसके मूल में विचारधारा से अधिक भू-राजनीतिक यथार्थ, आर्थिक गणनाएं और क्षेत्रीय शक्तियों की बढ़ती आत्मनिर्भरता है। अमेरिका की घटती सुरक्षा भूमिका, यूरोप की आंतरिक विभाजित स्थिति और वैश्विक शक्ति संतुलन में हो रहे बदलावों ने क्षेत्रीय देशों को अपनी सुरक्षा जिम्मेदारी स्वयं संभालने के लिए प्रेरित किया है।

लंबे समय तक पश्चिम एशिया की सुरक्षा व्यवस्था अमेरिकी नेतृत्व और गारंटी पर आधारित रही, किंतु ट्रंप के कार्यकाल के बाद से अमेरिका की नीति अधिक लेन-देन आधारित और अनिश्चित होती गई है। इससे पारंपरिक सहयोगी देशों को यह महसूस होने लगा कि संकट के समय अमेरिकी हस्तक्षेप स्वतःस्फूर्त नहीं रहेगा। यूरोप भी यूक्रेन युद्ध, ऊर्जा संकट के कारण इस क्षेत्र में प्रभावी सुरक्षा भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं है। ऐसे में क्षेत्रीय शक्तियां वैकल्पिक सुरक्षा व्यवस्थाओं की तलाश में हैं। इस बदलते परिदृश्य में एक धारा पाकिस्तान, सऊदी अरब और तुर्किये के बीच उभरती निकटता के रूप में दिखाई देती है, जिसे 'इस्लामिक नाटो' भी कहा जा रहा है।

पाकिस्तान लंबे समय से सऊदी अरब के साथ रक्षा सहयोग रखता आया है, किंतु हालिया वर्षों में इस संबंध को व्यापक रणनीतिक ढांचे में बदलने का प्रयास तेज हुआ है। उसकी कोशिश है कि सऊदी संसाधनों और तुर्किये की रक्षा तकनीक के साथ मिलकर एक ऐसा सुरक्षा समूह बनाया जाए, जो अमेरिका पर निर्भरता कम कर सके। हालांकि इस प्रस्तावित धुरी की मजबूती उतनी नहीं है, जितनी उसकी राजनीतिक बयानबाजी से प्रतीत होती है। पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था गंभीर

संकट में है और उसकी क्षेत्रीय विश्वसनीयता सीमित होती जा रही है। भारत के साथ उसका संघर्ष केवल भू-क्षेत्रीय नहीं, बल्कि वैचारिक भी है, जिसे उसकी सैन्य स्थापना अब भी 'दो-राष्ट्र सिद्धांत' के रूप में जीवित रखे हुए है।

इसी वैचारिक ढांचे के माध्यम से पाकिस्तान मुस्लिम दुनिया में समर्थन जुटाने की कोशिश करता रहा है, किंतु व्यावहारिक स्तर पर उसे बार-बार यह एहसास हुआ है कि मजहबी एकजुटता अपने आप में स्थायी रणनीतिक समर्थन की गारंटी नहीं देती। सऊदी अरब अपनी सुरक्षा आवश्यकताओं को विविधीकृत कर रहा है। उसके अमेरिका, चीन, भारत और क्षेत्रीय शक्तियों के साथ समानांतर संबंध हैं। भारत में उसके बड़े आर्थिक हित हैं। तुर्किये भी नाटो का सदस्य रहते हुए स्वतंत्र क्षेत्रीय भूमिका निभाने की कोशिश कर रहा है, जिससे इस प्रस्तावित धुरी में अंतर्विरोध पैदा होते हैं। सऊदी और तुर्किये दोनों ही मुस्लिम दुनिया में नेतृत्व की आकांक्षा रखते हैं, जो उन्हें सहयोगी से अधिक प्रतिस्पर्धी बनाती है। शायद इसीलिए उसने सऊदी और पाकिस्तान के सैन्य गठजोड़ में शामिल होने से इन्कार कर दिया।

सऊदी अरब और पाकिस्तान के समानांतर एक दूसरी रणनीतिक साझेदारी भारत, संयुक्त अरब अमीरात और इजरायल के बीच उभर रही है। यह साझेदारी साझा सुरक्षा चिंताओं, तकनीकी क्षमताओं पर आधारित है। रक्षा, खुफिया, समुद्री सुरक्षा, साइबर और अंतरिक्ष जैसे क्षेत्रों में यह सहयोग धीरे-धीरे गहराता जा रहा है। यूएई का दृष्टिकोण वैचारिक नेतृत्व के बजाय स्थिरता, प्रतिरोधक क्षमता और आर्थिक विकास पर केंद्रित है। यमन से लेकर अफ्रीका के हार्न क्षेत्र तक यूएई ने यह दिखाया है कि वह अपने सुरक्षा हितों को स्वतंत्र रूप से परिभाषित करने के लिए तैयार है, भले ही इसके लिए उसे पारंपरिक सहयोगियों से अलग रास्ता क्यों न अपनाना पड़े। इजरायल के साथ सामान्यीकरण ने यूएई को क्षेत्रीय सुरक्षा ढांचे में एक नई स्थिति प्रदान की है। भारत के लिए यह साझेदारी रणनीतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण है। जहां नई दिल्ली पाकिस्तान द्वारा इस्लामिक जगत में अपनी स्थिति मजबूत करने के प्रयासों को लेकर सतर्क है, वहीं वह इजरायल के साथ दशकों से चले आ रहे संबंधों को यूएई जैसे आर्थिक और रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण देश के साथ जुड़ने का भी अवसर देख रही है।

हाल में भारत और यूएई के बीच रक्षा सहयोग पर आशय पत्र इसी दिशा में एक संकेत है। इस समीकरण का विस्तार पूर्वी भूमध्यसागर तक दिखाई देता है, जहां भारत, इजरायल, ग्रीस और साइप्रस के बीच बढ़ता संवाद तुर्किये की समुद्री आक्रामकता और व्यापार मार्गों की सुरक्षा से जुड़ा है। भारत-मध्य पूर्व-यूरोप आर्थिक गलियारे जैसे प्रयास इस रणनीतिक नेटवर्क को आर्थिक आधार भी प्रदान करते हैं। एक ओर ऐसा ढांचा है जो वैचारिक अपील और प्रतीकात्मक शक्ति पर निर्भर करता है, दूसरी ओर एक ऐसा समीकरण है, जो आर्थिक मजबूती, तकनीकी सहयोग और साझा सुरक्षा पर आधारित है।

पश्चिम और दक्षिण एशिया की सुरक्षा व्यवस्था एक बहुध्रुवीय, आत्मनिर्भर और क्षेत्रीय रूप से संचालित ढांचे की ओर अग्रसर है। जो देश आर्थिक रूप से मजबूत, तकनीकी रूप से सक्षम और रणनीतिक रूप से सुसंगत हैं, वे इस नए परिदृश्य में बेहतर स्थिति में होंगे। जो केवल वैचारिक नारों और प्रतीकात्मक गठबंधनों पर निर्भर हैं, वे शायद ध्यान आकर्षित कर लें, लेकिन स्थायी शक्ति हासिल नहीं कर पाएंगे। फिर भी भारत को सतर्क रहना होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 05-02-26

भारत-अमेरिका समझौता समानता का नया दौर

हर्ष वी पंत,विवेक मिश्र, (पंत ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में वाइस-प्रेसिडेंट और मिश्रा फेलो (अमेरिका) हैं।)

डॉनल्ड ट्रंप के नए कार्यकाल को अक्सर अमेरिकी राष्ट्रपति का ऐसा दौर माना जाता है, जहां दुनिया भर में बेचैनी बढ़ी है, तमाम देश शुल्क की बढ़ी दरों, धमकियों और अजीब सी अनिश्चितता से परेशान हैं। लेकिन भारत की बात करें तो वह अमेरिका के शुल्क के हथियारों की धार कुंद करने में काफी हद तक कामयाब रहा है। इसने जवाबी कार्रवाई नहीं की, मजबूत आर्थिक वृद्धि बनाए रखी और अमेरिका से आ रहे उकसावों के जवाब में खीझ दिलाने वाल मौन धारण कर जानबूझकर संयमित रुख बना रखा।

पलटकर देखें तो यह रणनीति कारगर साबित हुई। अमेरिका और भारत के बीच असमान आर्थिक संबंधों के बावजूद अमेरिका इस व्यापार समझौते के लिए भारत से ज्यादा उत्सुक नजर आ रहा था। यह भी सच है कि लंबे समय तक समझौता नहीं हो पाने की कीमत भी चुकानी पड़ी। भारत को इसका स्पष्ट आर्थिक नुकसान हुआ और उन क्षेत्रों में ज्यादा हुआ जो अमेरिका को निर्यात पर ज्यादा निर्भर थे।

भावनाओं को परे रख दें तो इस व्यापार समझौते का आर्थिक महत्त्व निर्विवाद है क्योंकि दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और तेजी से बढ़ती चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के बीच हो रहा है। कर की नई 18 प्रतिशत दर से दोनों देशों के बीच महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहन मिल सकता है और वस्त्र, वाहन कलपुर्जे, रत्न एवं आभूषण तथा द्विपक्षीय व्यापार के अन्य प्रमुख क्षेत्रों को एक बार फिर ऊर्जा मिल सकती है। मगर भारत-अमेरिका व्यापार समझौते का द्विपक्षीय, क्षेत्रीय और वैश्विक राजनीतिक महत्त्व और भी ज्यादा है।

द्विपक्षीय स्तर पर देखें तो यह समझौता भारत-अमेरिका संबंधों के एक काफी अप्रिय दौर को समाप्त करने वाला है। इस अप्रिय दौर में ट्रंप का अड़ियलपन राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में फैल गया था। यह समझौता राजनीतिक बदलाव का प्रतीक है, जो भारत के नजरिये से खास तौर पर स्वागत योग्य है क्योंकि अमेरिका ने भी अचानक क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर अपना रुख बदला है। जब भारत और अमेरिका व्यापार समझौते पर बातचीत कर रहे थे, तब वैश्विक घटनाक्रम तेजी से बदला और बार-बार ऐसा लगा कि ट्रंप प्रशासन की प्राथमिकता कुछ और हैं।

कम से कम बातों से लगा कि अमेरिका में राजनीतिक बदलाव हुआ, जो भारत के विरुद्ध था। पहली थी ऐसे रिश्ते में खुलकर व्यापारीवादी नजरिया अपनाना, जो इस नजरिये से नहीं बना था। इस बात ने भारत को चौंका दिया और उसे अपनी नीतियां नए सिरे से तय करनी पड़ीं। अमेरिका के 25 प्रतिशत जवाबी शुल्क को सभी ने बहुत ज्यादा माना और भारत को रियायतें देने के लिए मजबूर करने की कोशिश भी माना। दूसरी बात रूसी तेल खरीदने के एवज में भारत पर 25 प्रतिशत दंडात्मक शुल्क और लगाना था। यह वाकई सख्त कदम था क्योंकि रूस-यूक्रेन युद्ध में भारत का कोई प्रत्यक्ष हित नहीं था, लेकिन उसे बीच में रखकर रूस पर दबाव बढ़ाने का प्रयास किया गया।

तीसरी बात, भारत के पड़ोस में अमेरिका की नीतियां पहले के रुख से अलग होने लगीं, जो खास तौर पर पाकिस्तान के साथ अमेरिका के सहयोग में नजर आया। सच कहें तो अमेरिका-पाकिस्तान संबंधों में घनिष्ठता जरूर नजर आई मगर इससे भारतीय हितों को कोई ठोस नुकसान नहीं हुआ। मोटे तौर पर यह बदलाव अमेरिका के आर्थिक हितों और क्षेत्र में उसकी रणनीतिक स्थिति से प्रेरित लगा।

अंतिम बात, व्यापार गतिरोध से अमेरिका में भारत-विरोधी भावनाओं को बढ़ावा मिला, जो कभी-कभी वहां बढ़ती रूढ़िवादी और स्वदेशी लहर को हवा दी। ऐसी स्थिति में व्यापार समझौते की घोषणा और 500 अरब डॉलर के द्विपक्षीय व्यापार का महत्वाकांक्षी वादा अहम मोड़ है चाहे इसके लिए कोई मियाद तय क्यों नहीं की गई हो। यह समझौता दोनों देशों के रिश्तों के उन पहलुओं को सक्रिय कर सकता है, जो अभी तक हाशिये पर थे।

उदाहरण के लिए लंबे समय से अटकी क्वाड बैठक को अब नई राजनीतिक वैधता मिल गई है, जिसे व्यापार समझौते के बगैर बनाए रखना मुश्किल होता। भारत की अध्यक्षता में होने वाली क्वाड बैठक हिंद-प्रशांत रणनीति और क्षेत्रीय संतुलन के लिए आवश्यक आधार भी प्रदान करेगी। ट्रंप प्रशासन के रणनीतिक दस्तावेजों - राष्ट्रीय सुरक्षा रणनीति और राष्ट्रीय रक्षा रणनीति - में पहले ही हिंद प्रशांत के लिए प्रतिबद्धता दिखती थी मगर शर्त थी कि क्षेत्रीय साझेदारों को अधिक बोझ उठाना होगा। हालांकि बहुत कुछ इस पर निर्भर करेगा कि भारत हिंद-प्रशांत के लिए अपनी प्रतिबद्धता किस तरह आगे ले जाना चाहता है मगर अमेरिका से समर्थन इसे मजबूत आधार प्रदान कर सकता है।

भारत-अमेरिका संबंधों में निरंतरता बनाए रखना लाभकारी साबित हुआ है। इस घटनाक्रम से तीन स्पष्ट बातें सामने आती हैं। पहली, भारत और अमेरिका अपने संबंधों के एक नए चरण में प्रवेश कर चुके हैं, जिसमें गहरे तक बैठी असमानता की जगह धीरे-धीरे ज्यादा समानता ले रही है। दूसरी, शुल्क प्रकरण ने भारत को भरोसे का पुनर्मूल्यांकन करने और देश के भीतर आर्थिक एवं श्रम सुधारों के साथ बाहर विविध पक्षों के साथ साझेदारी के जरिये संतुलन की रणनीति अपनाने के लिए प्रेरित किया। अंत में, व्यापार समझौता भारत के लिए ऐतिहासिक अवसर जैसा है मगर कुछ चुनौतियां भी हैं। इनमें सबसे प्रमुख है महाशक्तियों विशेषकर चीन और रूस के साथ पेचीदा संबंधों को संभालना। बहुत कुछ इस बात से तय होगा कि इनके साथ अमेरिका के द्विपक्षीय संबंध क्या शक्ल लेते हैं।

भारत और अमेरिका के लिए सबसे बड़ी साझा चुनौती शायद यह होगी कि व्यापार गतिरोध के दौरान पनपी नकारात्मक धारणाओं को कैसे खत्म किया जाए। यदि वर्तमान गति बनी रहती है तो इस प्रकरण को द्विपक्षीय संबंधों में बड़ी दरार के बजाय संक्षिप्त मोड़ के रूप में याद किया जाएगा। किंतु भारत के लिए स्थायी परीक्षा यह होगी कि वह बाहरी असर के बगैर स्वतंत्र रिश्तों को कैसा निभाता है। रूस-यूक्रेन संघर्ष में यह स्पष्ट रूप से दिख चुका है।

जनसत्ता

Date: 05-02-26

आभासी खतरे

संपादकीय

आनलाइन खेल मनोरंजन का साधन हो सकता है, लेकिन इसके लिए सीमित समय तय करना और आत्मनियंत्रण बेहद जरूरी है। अगर किसी बच्चे या किशोर को इसकी लत लग जाए, तो इसके परिणाम भयावह हो सकते हैं। आज की आभासी दुनिया में ऐसे खेल भी आ गए हैं, जिनमें उपयोगकर्ताओं को जोखिम भरे कार्य दिए जाते हैं। बच्चे इन खेलों की ओर ज्यादा आकर्षित होते हैं, जिससे वे न केवल शारीरिक एवं मानसिक विसंगतियों का शिकार हो जाते हैं, बल्कि कई बार आत्मघाती कदम उठा लेते हैं। उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद में ऐसी ही एक हृदय विदारक घटना सामने आई है। यहां तीन नाबालिग बहनें मंगलवार देर रात इमारत की नौवीं मंजिल से कूद गईं, जिससे उनकी मौत हो गई। पुलिस को प्रारंभिक जांच-पड़ताल में पता चला कि ये तीनों बहनें एक ऐसे आनलाइन खेल की आदी थीं, जिसमें खेल के दौरान कुछ इस तरह के कार्य दिए जाते हैं, जो खतरे से खाली नहीं होते ।

इसमें दोराय नहीं कि इंटरनेट और स्मार्ट फोन ने हमारे जीवन को सुविधाजनक बना दिया है, लेकिन तकनीक के इस साधन में कई तरह के खतरे भी छिपे हुए हैं। मोबाइल फोन के अत्यधिक इस्तेमाल से न केवल बच्चों और किशोरों की पढ़ाई प्रभावित होती है, बल्कि उनके व्यवहार पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गाजियाबाद में इमारत से कूदकर जान देने वाली लड़कियों के परिवारवाले भी इस बात से चिंतित थे और उनके आनलाइन गेम खेलने पर आपत्ति जताते थे। कहा जा रहा है कि परिवार वालों ने इन तीनों बहनों के मोबाइल फोन के इस्तेमाल पर रोक लगा दी थी, जिससे वे बेहद निराश थीं। सवाल है कि ऐसे आनलाइन खेलों की अनुमति कैसे दे दी जाती है, जो किसी बच्चे के जीवन को खतरे में डाल दे या फिर उसकी मौत का कारण बन जाए ? जाहिर है, इसके पीछे कानून में स्पष्ट दिशा-निर्देशों का अभाव हो सकता है। मगर अभिभावकों की भी यह जिम्मेदारी है कि वे इस तरह के जोखिम को हल्के में न लें और बच्चों के मोबाइल फोन के इस्तेमाल के दौरान उन पर नियमित नजर रखें।